अनुभवात्मक अध्यात्मवाद - अध्याय -१

भूमिका

इस अनुभवात्मक अध्यात्मवादी प्रबंध को मानव के कर कमलों में अर्पित करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ ।

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद अपने में अनुभवमूलक विधि से जीता जागता हुआ मानव की आपसी चर्चा है या दूसरी भाषा में अनुभवमूलक विधि से जीता जागता विवेक और विज्ञान की परामर्शात्मक प्रस्तुति है ।

सौभाग्य यह रहा कि सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व में अनुभव करने और उसकी अभिव्यक्ति को प्रस्तुत करने की सुखद घटना मेरे इस शरीर यात्रा में घटित हुई । यह मेरे ही स्वयं स्फूर्त जिज्ञासा की परिणिति रही । नियति के अनुसार, अनुभव को व्यक्त करने का स्वरूप, प्रक्रिया, लक्ष्य और दिशा मुझे स्पष्ट हुई, जिसके आधार पर इस कृति की रचना संभव हो पाई ।

जितनी भी सुनी हुई बातें हैं, उसके सार संक्षेप में, मेरे स्वयं को प्रमाणित होना ही, मेरा उद्देश्य बना रहा । इसी मानसिकता की गति जिज्ञासा में, जिज्ञासा शोध में, शोध अनुसंधान में प्रवर्तित होने के फलस्वरूप, नियति के अनुरूप होना संभव हो गया । अनुभवात्मक अध्यात्मवाद पूरा प्रबंधन रूप में साकार हुआ ।

इस अभिव्यक्ति की संप्रेषणा में यही आशय निहित है कि अपने में अनुभव को भाषा रूप देना बन गया है । उसी प्रकार इसे अध्ययन करने वाले हर व्यक्ति में, भाषा को अर्थ रूप में स्वीकारने की महिमा समाई हुई है । इसी विश्वास से इसको मानव में, से, के लिए अर्पित करना संभव हुआ ।

यह मैं अथ से इति तक अनुभव किया हूँ कि अनुभवमूलक विधि से किया गया सूझ-बूझ अर्थात् लक्ष्य और दिशा के अनुसार योजना और कार्य योजना तथा फल परिणाम - ऐसे फल परिणाम का अनुभव के अर्थ में सार्थक होना ही सर्वमानव सौभाग्य का स्वरूप होना पहचाना गया । इसी कारणवश इसे मानवता के लिए अर्पित किया गया है । इसी से अर्थात् अनुभवमूलक प्रणाली से न्यायपूर्वक जीना,

समाधानपूर्वक जीना, व्यवस्था में जीना, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना, यह सभी संभव हो चुका है ।

समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने का तात्पर्य - मानवीय शिक्षा कार्य में, न्याय सुरक्षा कार्य में, परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन कार्य में, लाभ-हानि मुक्त विनिमय कार्य में, स्वास्थ्य-संयम कार्य में भागीदारी करने से है ।

हम यह भी अनुभव कर चुके हैं कि हर समझदार मानव परिवार का समाधान समृद्धिपूर्वक जीना सुलभ होगा । मेरा यह भी विश्वास है कि हर मानव अर्थात् प्रत्येक नर-नारी समाधान, समृद्धि के प्यासे हैं । यह प्यास तृप्ति में परिवर्तित हो, यही इस अनुभव दर्शन का मूल उद्देश्य है ।

इसका मानव में स्वीकृत होना, नियति विधि और नियति होने के आधार पर इसका लोकव्यापीकरण होना आवश्यक है । इसे स्वीकारने के उपरान्त ही, इसे प्रस्तुत किया | मुझे पूर अरोसा है कि मानव कुल में आदि काल से बनी हुई अभ्युदय की अपेक्षा प्रयासों के क्रम में यह ग्रन्थ साढ़ताकता की मंजिल तक पहुँचने में उपयोगी होगा |

जा हो ! मंगल हो ! कल्याण हो !

-ए नागराज

इस ग्रन्थ से

* भ्रमित स्थिति में मानवीयता के विपरीत जीवों के सदृश्य जीना देखने को मिलता है, जबकि मानव की मौलिकता मानवीयता ही है । जागृति सहज विधि से मानवीयता स्वयं स्फूर्त विधि से प्रमाणित होती है ।

* अनुभव (जागृति) के पश्चात् नैतिकता पूर्वक मानव व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह कर पाता है, चरित्रपूर्वक व्यवहार करता है और संबंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्तिपूर्वक जी पाता है । यही सुख, सुन्दर और समाधानपूर्वक जीने की कला का स्वरूप है ।

* जागृति के अनन्तर हर व्यक्ति स्वाभाविक रूप में असंग्रह प्रतिष्ठा को समृद्धिपूर्वक, स्नेह प्रतिष्ठा को पूरकतापूर्वक, विद्या प्रतिष्ठा को जीवन विद्यापूर्वक, सरलता प्रतिष्ठा को सह-अस्तित्व-दर्शनपूर्वक, अभय प्रतिष्ठा को मानवीयतापूर्ण आचरणपूर्वक वैभवित होने के लिए कार्य करता हुआ देखने को मिलता है ।

* जागृत जीवन ही ज्ञाता है, जीवन सहित सम्पूर्ण अस्तित्व ज्ञेय है और जागृत जीवन का परावर्तन क्रियाकलाप ही ज्ञान है ।

* आशा बंधन इन्द्रियों द्वारा सुखी होने के रूप में, विचार बंधन व्यक्ति द्वारा अपने विचारों को श्रेष्ठ मानने के रूप में और इच्छा बन्धन रचना कार्य की श्रेष्ठता को स्पष्ट करने के रूप में होता है ।

* जीवन नित्य होने के कारण अस्तित्व में ही वर्तमान रहता है | यही मानव शरीर यात्रा समय में मानव कहलाते हैं, शरीर त्यागने के उपरांत यही देवी, देवता, भूत-प्रेत कहलाते हैं |

अध्याय 1

समीक्षा एवम् प्रस्ताव

सुदूर विगत से ही अध्यात्मवादी, अधिदैवीयवादी और अधिभौतिकवादी विचार मानव-मानस में स्मृति और श्रुति के रूप में हैं । कल्पनाओं-परिकल्पनाओं के आधार पर वाङ्गमय रचना बहुत सारा हुआ है । इसमें अनेकानेक मानव ने भागीदारी का निर्वाह किया घोर परिश्रम किया । इसी क्रम में घोर तप, योगाभ्यास, यज्ञ, दान के रूप में भी अपने-अपने आस्थाओं के साथ जीकर दिखाया अथवा करके दिखाया । इन्हीं सब कृत्यों को आदर्शवादी कृत्य भी मानते आये हैं । क्योंकि ये सब कृत्यों को सब नहीं कर पाते थे । न करने वाले के लिए, करने योग्य कृत्यों के रूप में सभी प्रकार के धर्म ग्रंथ बताते आये । ये सब करने के उपरांत भी अध्यात्म, देवता और ईश्वर ये सब रहस्य में ही रहे । रहस्य की परिभाषा है - हम मानव जो कुछ जानते नहीं है वह सब रहस्य होना समीक्षित हुआ । इस विधि से नहीं जानते हुए मनवाने के जितने भी प्रयास हुए वह सब आस्थावादी कार्यकलाप के रूप में गण्य हुआ । आस्था का परिभाषा ही है नहीं जानते हुए किसी के अस्तित्व को स्वीकार करना । यह सर्वविदित है ।

ईश्वर, अध्यात्म और देवी-देवता के अधीनता में ही जीव जगत होना वाङ्गमयों में बताया गया है । अनजान घटनाओं की व्याख्या करने के क्रम में जीव-जगत अध्यात्म, देवी-देवता और ईश्वराधीन है इसके समर्थन में बहुत कुछ लिखा गया है । इन सभी प्रयासों का महिमा सहित अर्थात् बहुत सारे साधनों को नियोजित करने के उपरांत भी अध्ययन विधि से कोई प्रमाण, अनुभव विधि से कोई प्रमाण, प्रयोग विधि से कोई प्रमाण और व्यवहार विधि से कोई प्रमाण मिला नहीं । जबकि कोई मानव रहस्य को वरता नहीं । आस्था के आधार पर अपने कल्पनाशीलता के अनुरूप रहस्य को सजाने गया वही वांङ्गमय का स्वरूप बना । इसका आधार केवल मानव सहज कल्पनाशीलता-कर्म स्वतंत्रता ही है और मानव कर्म करते समय स्वतंत्र, फल भोगते समय परतंत्र रहा ।

इस समीक्षा को यहाँ इसीलिये प्रस्तुत किये हैं कि हर मानव सत्य, समाधान, व्यवस्था, न्याय, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को प्रमाणित करना चाहते हैं । हर मानव जन्म से ही सत्य वक्ता होता है इसलिए सत्य बोध होने की आवश्यकता है । भौतिकवादी और आदर्शवादी विधि से सत्यबोध होना

मानव जाति के लिए प्रतीक्षित है । इसलिए सर्वतोमुखी समाधान और न्यायबोध होना अभी तक प्रतीक्षित है, अर्थात् 20वीं शताब्दी के दसवें दशक तक प्रतीक्षित है । विक्रम शताब्दी के अनुसार 2052 आषाढ़ मास तक प्रतीक्षित है । इसी सर्वेक्षण, निरीक्षण और परीक्षण के आधार पर "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" की आवश्यकता को पहचाना गया ।

रहस्यमय और सुन्दर कल्पना के आधार पर अर्थात् मनलुभावन विधि से वांङ्गमयों में मोक्ष और स्वर्ग की कल्पनाएँ प्रस्तुत की गई है । जहाँ तक मोक्ष की बात है अध्यात्म विधि से ऐसा बताया गया है कि जीवों के हृदय में आत्मा रहता है । वह आत्मा ब्रह्म में अथवा परमात्मा में विलय हो जाता है । इसके लिये ब्रह्म ज्ञान ही एकमात्र शरण स्थली बताया गया । कुछ प्रणेताओं का कहना है यह एकांत विधि से संभव है और कुछ प्रणेताओं का कहना है घोर तप से, कुछ प्रणेताओं का कहना है योगाभ्यास से, संघ के शरण में जाने से, और कुछ प्रणेताओं का कहना है योग और संयोग से, होता है । ये सब मोक्ष के सम्बन्ध में बताए गए उपायों के क्रम में इंगित कराया गया । इंगित कराने का तात्पर्य स्वीकारने योग्य तरीके से है । और भी कुछ प्रणेता लोगों का कहना है कि प्रलय काल में परिणाम मोक्ष के रूप में जीव-जगत, ब्रह्म में अथवा देवी, देवता में विलय हो जाता है । ('वह' का तात्पर्य ऊपर कहे गये अध्यात्म, ईश्वर, देवी, देवताएँ) सबका कल्याण करेगा तब तक ईश्वरीय नियमों के साथ-साथ जीना ही धर्म संविधान है । ऐसा बताया करते हैं ।

जहाँ तक स्वर्ग की बात है इसे, इस धरती से भिन्न स्थली में संजोने का वांङ्गमयों में प्रयत्न किया । उन-उन लोक में कोई देवी-देवता का होना और उन्हीं के आधिपत्य में उनका सौन्दर्य और सुख रहने का विधि से बताया गया है । इन वांङ्गमयों में स्वर्ग को सर्वाधिक सम्मोहनात्मक और आकर्षक विधियों से सजा हुआ बताया गया है वहाँ पहुँचने के लिए जो ज्ञात स्थिति है वह पुण्य ही एक मात्र पूंजी बताई गई है । पुण्य को पाने के लिए स्वार्थी को परमार्थी होना आवश्यक बताया । अतिभोग-बहुभोगशीलता गलत है । इसी के साथ-साथ स्वर्ग की अर्हता को पूरा करने के लिए त्याग का उपदेश दिया गया । ज्यादा से ज्यादा सुख-सुविधावादी वस्तुओं का दान योग्य पात्रों को करने से स्वर्ग में अनंत गुणा सुख सुविधाएं मिलने का आश्वासन किताबों में लिखा गया । ध्यान, स्मरण, कृत्यों को पुण्य कमाने का स्त्रोत बताया गया । इसी के साथ-साथ अवतारी आचार्य, गुरू, सिद्ध, आश्वासन देने में समर्थ व्यक्तियों का सेवा, सुश्रुषा, उनके लिए अर्पित दान, स्तुति, कीर्तन ये सब पुण्य कमाने का

विधि बताए । इसी के साथ-साथ परोपकार, जीव, जानवर, पशु पक्षीयों के साथ प्रेम, फूल-पत्ती, पेड़ के साथ दया करने को भी कहा । साथ ही मन को धोने और स्थिर करने की बातें बहुत-बहुत कही गयी है । इन सभी उपदेशों का भरमार रहते हुए भी भय, प्रलोभन और आस्थावादी कृत्यों से अधिक मानव परंपरा में इस समूची धरती में और कुछ होना देखने को नहीं मिला । अर्थात् उपदेश के रूप में जो बातें कहते आये हैं उसके अनुरूप कोई प्रमाण होता हुआ देखने को नहीं मिला । इसी समीक्षा के आधार पर ही "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" की परमावश्यकता को स्वीकारा गया ।

दूसरे विधा से मानव सहज कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता के आधार पर विचारों का उन्नयन हुआ, जिसको हम भौतिकवादी विचार कह रहे हैं । सम्पूर्ण कल्याण का आधार सुख-सुविधा और स्वर्ग का स्वरूप भौतिक वस्तु ही होना बताया गया । इसे अधिकांश लोकमानस में स्वीकारा भी गया । इस प्रकार अदृश्य के प्रति आस्थान्वित होना, दूसरे विधि से जो दृश्यमान वस्तुएँ है उसी को सम्पूर्ण सुख-सुविधा का आधार या विकास का आधार मान लेना देखा गया । भौतिकवाद भय और प्रलोभन के बीच झूलता हुआ संघर्षशील, संघर्षमय मानसिकता को तैयार करता हुआ देखा गया । भौतिकवाद का सार बात समीक्षा के रूप में यही मिलता है कि संघर्ष के लिए तैयार रहना परमाणु, अणु और अणु रचित पिण्डों का कार्यकलाप है । उसी क्रम में मानव भी एक रासायनिक-भौतिक वस्तुओं से रचित पिण्ड है । इनको सर्वाधिक संघर्ष करने का हक है । इसका प्रयोग करना ही प्रगति और विकास बताया गया है । यह भय, प्रलोभन निग्रह बिन्दुओं में फँसा हुआ आस्थाओं से टूटकर स्वर्ग में मिलने वाला सभी चीजें यहीं मिलने का संभावना बना । उसके लिए आवश्यकीय संघर्ष को जैसा-जैसा भौतिकवादी शिक्षा में शिक्षित हुए वैसे-वैसे अनेक तरीकों सहित संघर्ष करने के लिए प्रवृत्तियाँ बुलंद होते ही आया, अर्थात् बढ़ता ही आया । जबकि हर मानव भय और प्रलोभन रूपी भ्रमवश ही संघर्ष करता है । आदि काल से कबीला युग तक भी भय और प्रलोभन रहा । प्राकृतिक प्रताड़ना से भयभीत रहा हुआ मानव जाति को राजा और गुरु ने मिलकर स्वर्ग और मोक्ष का, जान-माल की सुरक्षा का आश्वासन देते रहे । कबीला युग तक में संघर्षशीलता हाथ, पैर, नख, घूंसा, पत्थर, डंडा, तलवार तक पहुँच चुके थे । जैसे ही राजदरबार आया, समर शक्ति संचय विद्या में समुन्नत क्रिया के नाम से जो कुछ भी किया वह सब बन्दूक, बारूद, हथगोला, गुलेल प्रणाली, धनुष प्रणाली के साथ-साथ राडर प्रणाली जुड़कर वध, विध्वंसात्मक जैविक रासायनिक अणुबमों को दूर मार, मध्यम मार,

निकट मार विधियों को विधिवत तकनीकी पूर्वक हासिल किया । इसमें भय स्वाभाविक रूप में बरकरार रहना पाया गया । प्रलोभन, छीना-झपटी, वंचना-प्रवंचना, द्रोह-विद्रोह पूर्वक और छल-कपट-दंभ-पाखंड पूर्वक परस्पर शोषण चरमोत्कर्ष रूप धारण किया । प्रलोभन के रूप में संग्रह-सुविधा उद्वेलित करता ही आया । इसका तात्पर्य यह हुआ आदिकाल में जो भय और प्रलोभन रहा है, उसे नर्क के प्रति भय और स्वर्ग के प्रति प्रलोभन के रूप में आदर्शवाद ने स्थापित किया, भौतिकवाद से सुविधा, संग्रह, भोग, अतिभोग में प्रलोभन, दूसरे का अपहरण, छीना-झपटी, लूट-खसोट करते समय सामने वाला कुछ कर जायेगा, इस भय के मारे दमनशील उपायों को अपनाने के आधार पर संघर्ष मानसिकताएँ सज गया । इसी में सर्वाधिक व्यक्तियों का मन प्रवृत्त रहना पाया जाता है । इसका पहला साक्ष्य संग्रह, द्वितीय साक्ष्य दमनकारी उपायों के प्रति पारंगत रहना ही है । ऐसे दमनकारी उपायों से लैस रहने के लिए व्यक्ति, परिवार और हर समुदाय अधिकाधिक सुसज्जित होने के लिए यत्न, प्रयत्न, कर्माभ्यास, युद्धाभ्यास करता हुआ समूची धरती में दिखाई पड़ता है । इन्हीं गवाहियों के साथ आदिकालीन अर्थात् झाड़ के ऊपर, गुफा, कन्दराओं में झेलते हुए समय में जो मानव मानसिकता में भय सशंकता सर्वाधिक प्रकोप किया था वह यथावत् रहा है । उसके साथ प्रलोभन मानसिकताएँ धीरे-धीरे बढ़ते हुए समूचे धरती की सम्पदा का हर व्यक्ति अपने तिजोरी में बंद कर लेने की कल्पना करता हुआ स्थिति को सर्वेक्षित किया जा सकता है । इसका गवाही यही है संग्रह का तृप्ति बिन्दु नहीं है ।

ऊपर कहे सम्पूर्ण विश्लेषण और समीक्षा के मूल में मानव मानसिकता ही अनुप्राणन वस्तु है । स्वर्ग-नर्क भय, प्रलोभन, सुविधा संग्रह भोग-अतिभोग इन खाकों में, इन कक्षों में, इन गतियों में मानव जाति का स्वरूप एक दूसरे के बीच विश्वास का सूत्र व्याख्या करने में असमर्थ रहा है । इसलिये सर्व मानव के परस्परता में भी सह-अस्तित्व नित्य प्रभावी होने सहज सत्य को, यथार्थता को, वास्तविकता को शिक्षागम्य, लोकगम्य, लोकव्यापीकरण कार्यक्रमों सहित "अनुभवात्मक अध्यात्मवाद" मानवीयतापूर्ण मानव मानस के लिए अति आवश्यक समझा गया है । इसीलिये, अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व रूपी ध्रुव, मानव स्वीकृत प्रामाणिकता रूपी ध्रुव के मध्य में अनुभव सहज अनिवार्यता, आवश्यकता, प्रयोजन और उसकी निरंतरता को ज्ञान सम्मत विवेक सम्मत और विज्ञान सम्मत विधि से मैनें प्रस्तुत किया है ।

मध्यस्थ दर्शन (सहअस्तित्ववाद)

प्रणेता एवं लेखक: अग्रहार नागराज

सम्पूर्ण वांडमय डाउनलोड:

www.madhyasth.org

www.bit.ly/dpsroot